आई.एस.एस.एन. संख्या : 2454–2458
नवरचना NAVRACHNA
www.grefiglobal.org/Journals
वर्ष 1, अंक 2, दिसम्बर 2015, पृ. 3–5

गांव और नगर के बदलते आयाम और प्रशासकीय व्यवस्थायें

ब्रजराज चौहान*

प्रशासन व जनता के बीच पारस्परिक सम्बन्धों की निकटता या दूरी बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करती है कि जनता के जीवन क्रम की परिधियां प्रशासनिक व्यवस्था की परिधियों से कितना मेल खाती है। प्रश्न सामाजिक जीवन और प्रशासनिक इकाइयों के समवर्ती होने का है। बहुत कुछ इसी आधार पर पंचायती राज की विभिन्न इकाइयों– ग्राम पंचायत, न्याय पंचायत, ब्लाक समिति– के निर्धारण होते रहे हैं और कई बार उन्हें समवेत बनाने के पुनः निर्धारण के प्रयास भी। ऐसी प्रक्रिया में सामंजस्य स्थापित हो भी जाता है, और कई बार विषमताएं भी उजागर होती हैं, और यह क्रम चलता रहता है। सामुदायिक विकास खण्ड का निर्माण बड़े आकार से हुआ, तत्पश्चात उसमें स्वतन्त्र इकाईयां बनीं, और कुछ राज्यों में जिला स्तर पर अधिकार दिए गये। योजना आयोग में भी "क्षेत्रीय समस्याओं" के समाधान के लिये गांव से अधिक व्यापक व जिले से छोटे आकार को बल दिया गया। आधार–भूत विचार था कि कुछ सुविधाएं हर गांव में उपलब्ध नहीं करायी जा सकती– अतः कुछ ग्राम समूहों में उनका नियाोजन हो : उच्च माध्यमिक शालाएं, औषधालय, व्यापार मंडी इसके कतिपय उदाहरण हैं। सिंचाई के मध्यम दर्जे के साधन भी इसमें आते हैं। उक्त सभी व्यवस्थाएं ग्रामीण जीवन को केन्द्र मानकर बनाई गयी हैं, और इनके पीछे आधार सम्भवतः ग्रामीण विकास को ग्रामीण जीवन की परिधि के निकटतम लाना रहा है।

ग्रामीण जीवन के विगत 10 वर्षों के अध्ययनों में एक नये आयाम को उजागर किया जाने लगा है। समाज–विज्ञान में ग्रामीण व शहरी समाजों की विषमताओं व अंतरों को बिन्दु–वार व्यक्त करने के स्थान पर अब ग्रामीण–शहरी सम्बन्धों पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। यूनेस्को में इस बारे में विभिन्न राष्ट्रों में ऐसे अध्ययन किये गये– जैसे बंगकाक में गांवों से छः महीने के लिये युवक चले आते हैं, टैक्सी चालक बन जाते हैं, फिर पर्याप्त धन कमा कर लौट जाते हैं; अरब देशों में ग्रामीण व्यक्ति तेल के कारखानों की ओर जाते हैं और उनका प्रभाव शेष ग्राम पर पड़ता है। मैक्सिको नगर तो बढ़ता–बढ़ता कई ग्रामों को आत्मसात कर चुका है; और दक्षिण अमेरिका के विकासशील देशों में गांवों से राजधानी की ओर इतना पलायन हो रहा है कि देश का प्रमुख नगर झुग्गी–झोंपड़ियों के अनुरुप शैन्टी कस्बों से घिर गया है; और उस नगर में संचालित आन्दोलन शासन सत्ता को हिला भी सकते हैं। भारत में कलकत्ता व मुम्बई जैसे नगर इन दुविधाओं के बीच हैं ही, दिल्ली भी अब पीछे नहीं रहा। इन सभी परिस्थितियों के बीच गांवों को अधिक आकर्षक

*अवकाश प्राप्त प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, मेरठ विश्वविद्यालय, मेरठ, उ.प्र.।

तथा छोटे नगरों को विकसित सुविधाएं प्रदान करने की बात चल पड़ी है। अब गांव व नगर के बदलते हुए सम्बन्धों को समझना विचार व आयोजन को नया आधार प्रदान कर रहा है।

उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में मेरठ क्षेत्र के अध्ययनों में समाज विज्ञान में इस दिशा में कुछ उल्लेखनीय कार्य हुआ है। नगर व कस्बों और गांवों में इस्लाम धर्म के अनुयायियों में दो समूहों का अध्ययन हम लोगों को यह सोचने में सहायक हुआ कि दूध व सब्जी का उत्पादन केन्द्र ग्रामीण है जबकि इनकी खपत नगरों में है। ग्रामीणों को कम अध्ययन के बाबजूद भी नगर में स्थित बाजार से सम्पर्क करना है, यातायात का प्रबन्ध उन्हें अपने ट्रैकटरों, मोटर साइकिल, टैम्पो व बस से करना है। उन्हें ज्ञात है कि होली के एक पखवाड़े पहले ही मावा (खोया) दिल्ली पहुंचाना है, और समय पर सब्जियों व आलू जैसी खराब होने वाली उत्पादक वस्तुओं को पास के नगर में कोल्ड स्टोरेज तक पहुंचा देना है। भूमि का क्रय–विक्रय भी होता रहता है अतः (निकट के नगर/कस्बे में स्थित) तहसील भी जाना है और आपसी–खटपट में थाने व कचहरी तक। सरकारी औषधालय व मेरठ का मेडिकल कालेज बड़ी संख्या में मरीजों को भर्ती करता है। कपड़ा बुनने वाले समूह के व्यक्ति सूत शहर से लाते हैं और तैयार कपड़ा निकट के कस्बों व नगर में आढ़तियों की दुकानों पर ले जाते हैं, जिनका काम ग्राम व बड़े नगरों व अन्य राज्यों के खरीददारों के बीच सम्पर्क बैठाना , भाव तय करना और लेन–देन की समय–सीमा निर्धारण कर गारंटी देना भी है। दूसरी ओर गांव से आये कारीगर नगरों व बाजार की नई पसन्द व चलन से अभ्यस्त होते हैं। जब भी राजनेताओं का सहयोग मिला गांव से बस चलवा दी, कभी औपचारिक रुप से व कभी वैसे ही; और राज्य की राजधानी जाकर बिजली गांव तक पहुंचवायी; इसके बाद सूरत से मेरठ व फिर कस्बों व गांवों तक नाइलोन के धागे पर काम करने की कुशलता प्राप्त की, बिजली आने पर हथ–करघा के स्थान पर पावरलूम से उत्पादन होने लगा। ग्राम–नगर के सम्पर्क को सुविधाजनक बनाने में एक उल्लेखनीय प्रयास उस समय किया गया जब श्री चेन्ना रेड्डी मुख्यमंत्री थे। अपने शैक्षणिक भ्रमण के दौरान हम लोगों ने हैदराबाद के निकट प्रोफेसर श्यामा चरण दुबे के अध्ययन वाले गांव शामीरपेट देखने का निर्णय किया। पता चला कि वहां "कार्गो–बस" जायेगी। यह एक नया शब्द था– देखा तो बस के दो भाग थे – आगे का आधा भाग बैठने के लिये सीटों वाला था, पीछे वाले भाग में खिड़की के सहारे तो सीटें थीं परन्तु बीच का भाग खाली था। उसमें ग्रामीण यात्री अगला सामान रख कर लाते और ले जाते थे। राजकीय बसों में यह स्वरुप बड़ा आकर्षक तो लगा ही, पर यह भी आभास हुआ कि ग्रामीण–नगरीय सम्पर्क कों सुविधाजनक बनाने के लिये प्रशासन की पहल पर नये विचार भी क्रियान्वित हो सकते हैं। इन सम्पर्कों का विस्तार से अध्ययन किया गाया है– गुजरात में अमूल डेरी के सम्बन्ध में व पश्चिमी उत्तर प्रदेश के ग्रामीण नेतृत्व के सम्बन्ध में। अति संक्षेप में निष्कर्ष थे–

– गांव के नेता पद को प्राप्त किये व उम्मीदवारी लिये व्यक्ति महीने में 7 से 12 दिन नगरों में लोगों का काम करवाने जाते हैं;

– अनुसूचित जाति के नेता ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीय वातावरण से प्रेरणा व मान्यता प्राप्त करते हैं;

– अब ग्रामीण नेतृत्व को वे व्यक्ति ही निभा सकते हैं जिनकी एक टांग नगर में हो, जिनकी अगली पीढ़ी भी नगर का अनुभव करने लगी हो;

— जो लोग सरकारी और गैर–सरकारी नगरीय दफतरों के सलीकों व तौर–तरीकों से वाकिफ हों और जिसकी पिछली पीढ़ी की जड़ें गांव में मजबूती से जमी हों।

— अब ग्रामीण सामाजिक जीवन का एक बड़ा भाग गांव में व दूसरा नगर में व्यतीत होता है। इसी प्रकार नगरों में गांवों से जाकर लोग बसने लगे हैं;

— और नगर अपने लिए कच्चा माल, मजदूर, व जीवन की विविध आवश्यकताएं पूर्ण कर रहे हैं; अपनी सीमाओं को बढ़ाकर गांवों का अपने अन्दर समावेश कर रहे हैं (राजस्थान में अलवर व जोधपुर नगरों में मालियों का उदाहरण उल्लेखनीय हैं);

— कई गामीण तो नगर क्षेत्र में अपना दूसरा निवास बनाने लगे हैं।

जीवन क्रम की उक्त गतिविधियों के बीच (जिनके उदाहरण अनेकों और भी बताये जा सकते हैं) प्रश्न यह उठता है कि प्रशासन की समानान्तर व्यवस्थाएं उनके कितने अनुरुप हैं? भारत की सामाजिक अनुसन्धान परिषद के इस प्रश्न पर कि हम लोगों के अध्ययन की नीतिगत सम्भावनाएं क्या हैं, हमारा उत्तर अनुवादित रुप में उद्धृत है :

"ग्रामीण व शहरी अंतः क्रियाओं की गहनता और प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है कि उस प्रशासनिक व्यवस्था पर विचार हो जिसमें नगर व कस्बों की म्यूनिसिपैलिटी व कॉर्पोरेशन को उन निर्णायक संस्थाओं से दूर रखा जाता है जो ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों और यहां तक कि जिला परिषदों के रुप में कार्यरत हैं। आवश्यकता है एक ऐसे समन्वित तंत्र की जो नगर, कस्बों व गांवों को उनके प्रभाव क्षेत्र (या जर्मन भाषा में "उमलैंड") में आते हों, से गहन व पारस्परिक रुप में जुड़े हों, सभी की समस्याओं को ध्यान में रख सकें ताकि प्रशासनिक व्यवस्था जनता के वास्तविक जीवन के समकक्ष हो सके।"

सम्पादकीय टिप्पणी : यह लघु लेख स्व. प्रोफेसर ब्रजराज चौहान द्वारा 27.11.1992 को लिखा गया था जो अभी तक अप्रकाशित है। इसकी एक प्रतिलिपि उन्होंने अपने भोपाल प्रवास के दौरान मुझे दी थी यह मुझे कुछ दिन पूर्व एक पुरानी फाइल से प्राप्त हुई है, इस लेख में उठाये गये समाजशास्त्रीय प्रश्न बिन्दु व सुझाव आज 2015 में भी उतने ही प्रासंगिक एवं महत्वपूर्ण हैं जितने कि उस समय थे। अतः हमने इसे लघु लेख के रुप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया है।